

## भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता—आधुनिक सन्दर्भ में

### सारांश

संस्कृति किसी राष्ट्र की अन्तश्चेतना होती है और सभ्यता उसका बाह्य कलेवर । व्यक्ति के मानसिक विचारों से उसका क्रियात्मक आचार निर्धारित होता है। भूयः पुनरावृत्त आचारों से प्रकृति का जन्म होता है तथा घनीभूत प्रवृत्तियों से चरित्र बनता है। चरित्र निर्माण की यही व्यक्तिगत प्रक्रिया जब समष्टि का रूप धारण करती है तो उसे संस्कृति कहा जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो भारतीय जनमानस की आधारभूमि के रूप में जो एक अजस्र प्राणदायिनी अमृतमयी धारा अनादि काल से अद्यतन भारतीय जीवन में प्रवाहित होती आ रही है, वही भारतीय संस्कृति है। इसमें व्यक्ति तथा समाज दोनों के समुचित विकास का मार्ग प्रशस्त किया गया है। इसमें एक ओर मनुष्य को व्यक्ति स्तर पर समुन्नत बनाने के लिये षोडश संस्कारों, चतुःपुरुषार्थों एवं चतुराश्रमों की व्यवस्था की गयी तो दूसरी ओर समाज के बहुमुखी उत्कर्ष हेतु व्यवस्था निर्धारित हुई।<sup>1</sup> प्राचीन काल में जगद्गुरु की पदवी पर आरूढ भारतवर्ष के ऋषियों—मुनियों से शिक्षा ग्रहण करने के लिये देश—विदेश से मनुष्य आते रहे। बौद्ध धर्म की शिक्षा प्राप्त करने के लिये चीन से आये ह्वेनसांग और फाह्यान ऐतिहासिक प्रमाण हैं। बौद्ध विप्लव के अनन्तर सनातन वैदिक आदर्श को पुनः प्रतिष्ठित करने वाले प्राज्ञ आचार्य शंकर ने एक देशीयता, संकीर्णता, दुर्बलता, मत—मतान्तर, बाह्य आडम्बरों में आबद्ध भारतीय जन—मानस को ज्ञानलोक से प्रकाशित किया।

**मुख्य शब्द** : भारतीय संस्कृति चरित्रनिर्माण, संस्कार, पुरुषार्थ, आश्रम व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था

### प्रस्तावना

#### भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता

प्रत्येक व्यक्ति समाज का एक महत्वपूर्ण अवयव है। समाज को उच्चतर अथवा निकृष्टतर बनाने में उसका विशिष्ट योगदान होता है। यही नहीं, कोई भी व्यक्ति कभी पूर्ण नहीं हो सकता । मानव जीवन निरन्तर प्रवाहमान है, जिससे ऊपर उठने तथा नीचे गिरने का अवसर सुलभ है। अतएव वैदिक ऋषियों ने मनुष्य को उसके जन्म के पूर्व से लेकर मृत्यु के बाद तक संस्कृत करते रहने की योजना बनायी ताकि उसके स्खलन की सम्भावना कम से कम रहे। वस्तुतः जिस प्रकार एक स्वर्णकार शाणोल्लीड मणि को निखारकर कटक—कुण्डल प्रभृति मनोवाञ्छित आभूषण निर्मित कर लेता है, हेमकार प्रकृतिलभ्य मणि के स्वरूप में परिवर्तन का प्रयास करता है, उसी प्रकार व्यक्ति के पूर्व जन्म एवं वंशानुक्रम से प्राप्त दुर्गुणों को निकालकर उसमें सद्गुण स्थापन के प्रयत्न को वैदिक विचारधारा में संस्कार कहा गया है। आचार्य चरक के शब्दों में—“संस्कारो हि गुणान्तरानुधानमुच्यते”<sup>2</sup> अर्थात् पहले से विद्यमान दुर्गुणों को हटाकर उसके स्थान पर सद्गुणों का आधान करना ही संस्कार है। तन्त्र वार्तिककार ने योग्यता आधान को संस्कार माना है—“योग्यतांचादधानाः क्रिया संस्काराः इत्युच्यन्ते”<sup>3</sup> आदि शंकराचार्य ने गुणाधान या दोषापनयन को “संस्कारो हि नाम गुणाधानेन वास्य दोषापनयनेन वा”<sup>4</sup> वैदिक ऋषियों ने मनुष्य को उसके जन्म के पूर्व से लेकर मृत्यु के बाद तक संस्कृत करते रहने की योजना बनायी ताकि उसके स्खलन की सम्भावना कम से कम रहे। प्रत्यक्ष में यह योजना व्यक्तिपरक ही दृष्टिगोचर होती है परन्तु इसका प्रमुख उद्देश्य है व्यक्ति के माध्यम से समाज और राष्ट्र को उन्नत बनाना।

भारतीय संस्कृति में सन्निविष्ट षोडश संस्कारों से संस्कियमाण व्यक्ति के जीवन के लक्ष्य के रूप में पुरुषार्थ चतुष्टय की मान्यता प्रादुर्भूत हुई। शरीर में निवास करने वाला जीवात्मा पुरुष कहा जाता है और उसका अभीष्ट पुरुषार्थ — पुरि देहे शते इति पुरुषः। पुरुषैरर्थ्यते प्रार्थ्यते इति

### जय सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर,

संस्कृत विभाग,

जी०पी०एस०राजकीय महिला

स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

अम्बारी, आजमगढ़

पुरुषार्थः। पुरुष के चार प्रमुख विभाग हैं – शरीर, मन, बुद्धि तथा भूतात्मा, जिनकी शुद्धि हेतु मनुस्मृति में कहा गया है—

अदिभर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।  
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिज्ञानेन शुध्यति।<sup>5</sup>

अर्थात् पानी से शरीर, सत्य से मन, विद्या और तप से भूतात्मा (जीवात्मा) तथा ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है। जहाँ जल आदि अलग-अलग पदार्थों से शरीर प्रभृति अंगों की शुद्धि होती है वहीं इन शरीर आदि अंगों को पृथक्-पृथक् चार पदार्थों की आवश्यकता होती है। यह चारों आवश्यक पदार्थ हैं— धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। आधुनिक मनोविज्ञान में स्वीकृत मानव की सप्तैषणाओं— जिजीविषा, रति, मान, धन, ज्ञान, न्याय एवं परलोक का इन्हीं में अन्तर्भाव हो जाता है। जीवन की अभिलाषा अर्थ में, स्त्री पुत्रादि की काम में, ज्ञान और न्याय की धर्म में तथा परलोक की कामना मोक्ष में समा जाती है। इसलिये चार पुरुषार्थों का विधान किया गया है।

पुरुषार्थ चतुष्टय यदि मानव शरीर से सम्बन्ध स्थापित करें तो हम देखते हैं कि अर्थ और शरीर का, काम और मन का तथा मोक्ष और आत्मा का सम्बन्ध सन्देहातीत है किन्तु धर्म और बुद्धि का सम्बन्ध विचारणीय है, क्योंकि सांसारिक धर्म बुद्धि का साथ करते हुए नहीं देखा जाता। वस्तुतः धर्म का मूल बिन्दु श्रद्धा के अभाव में बुद्धि किसी भी निश्चित लक्ष्य की ओर नहीं बढ़ सकती। अतएव धर्म एवं बुद्धि के घनिष्ठ सम्बन्ध को नकारा नहीं जा सकता, भले ही वह आपाततः अटपटा लगता है। इस प्रकार चारों पुरुषार्थ परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं और मानव जीवन के विकास में सहायक हैं।

मानव जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के सोपान के रूप में प्राचीन भारतीय संस्कृति में आश्रम व्यवस्था का विधान किया गया। वस्तुतः मानव जीवन एक श्रम साध्य यात्रा है जिसमें प्रतिक्षण कर्म निरत रहते हुए ही सौ वर्षों तक जीने की अभिलाषा सार्थक कही जा सकती है— कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः<sup>6</sup> इसीलिए मानव की सामान्य आयु सौ साल स्वीकार करते हुए ही धर्मादिचतुः पुरुषार्थों के सम्यक् उपयोग हेतु जीवन को 25-25 वर्षों के चार बराबर भागों में विभक्त किया गया — ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास।<sup>7</sup> इस प्रकार आश्रम एक तरह से कर्ममय जीवन यात्रा के चार पड़ाव हैं, चार आश्रम स्थल हैं जहाँ प्रत्येक व्यक्ति एक-एक कर निश्चित कार्य सम्पन्न करके ही आगे बढ़ता है।

प्राचीन काल में ऋषियों ने अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से मानव की कार्य-पद्धतियों का मनोवैज्ञानिक तथा समाजशास्त्रीय अध्ययन करके प्रत्येक आश्रम के लिये मूलभूत कर्तव्यों का निर्धारण किया है, जिनके पालन से व्यक्ति की लौकिक और पारलौकिक ऐषणाओं की पूर्ति होती है और न पालन करने पर यह यातना प्राप्त करने वाला हो जाता है।

इस प्रकार आश्रम व्यवस्था जीवनावधि को नियमित करने तथा निष्ठापूर्वक कर्तव्य पालन करने के लिये विहित है।<sup>8</sup> चतुराश्रमों की मान्यता पुरुषार्थों की

दृष्टि से युक्ति संगत मानी गयी है। ब्रह्मचारी के लिये जो कठोर दिनचर्या निर्दिष्ट है, उसका प्रयोजन यह है कि वह अनवरत कर्म संयुक्त रहे क्योंकि खाली दिमाग शैतान का घर है, जो अधःपतन का प्रमुख साधन है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी विभिन्न प्रयोगों एवं सर्वेक्षणों से यह प्रमाणित किया है कि खाली रहना — नर्तन, गीत स्पर्श, कोमल बिस्तर पर शयन, खट्टे तीखे पदार्थों का सेवन, गंध का भूयशः प्रयोग कामोत्तेजक होता है।

वेदाध्ययन के पश्चात् समावर्तन संस्कार के समय स्नातक को वंश परम्परा अविच्छिन्न रखने का निर्देश दिया जाता है एतदर्थ वह विवाह संस्कार के माध्यम से अपने लिये गृहिणी प्राप्त करता है और एतदर्थ गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता है। मनु का कहना है कि जिस प्रकार सभी प्राणियों का जीवन वायु पर आधृत है उसी प्रकार अन्य सारे आश्रम गृहस्थाश्रम पर अवलम्बित हैं। अन्तेवासी (ब्रह्मचारी), वानप्रस्थी एवं सन्यासी की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति गृहस्थ ही करता है। फलतः गृहस्थ आश्रम अन्य सभी आश्रमों का आधार माना गया है।

वानप्रस्थ का अर्थ है — वन की ओर प्रस्थान। मनु के अनुसार जब गृहस्थ के सिर के बाल पकने लगें, शरीर पर झुर्रियाँ पड़ने लगें तथा उसके पौत्र हो जायें तब उसे वानप्रस्थ का आश्रय लेना चाहिए। उसे अपनी अनुभवाश्रित ज्ञान सम्पदा से नवयुवकों का मार्गदर्शन तथा बालकों की अनिवार्य शिक्षा के गुरुतर दायित्वों का निर्वाह करना चाहिए। वानप्रस्थ आश्रम में व्यक्ति की आत्मीयता का क्षेत्र और अधिक व्यापक हो जाता है। अतः वानप्रस्थ आश्रम व्यक्तिगत उत्कर्ष के अतिरिक्त, महत्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं के समाधान का भी मार्ग प्रशस्त करता है।

सन्यास शब्द का अर्थ है सम्यक् रूप से त्याग— सम्यक् न्यासः प्रतिग्रहाणां सन्यासः। सामान्यतया यह समझा जाता है कि गृह—गृहस्थी छोड़कर निकल जाना, भस्म, त्रिपुण्ड लगाकर गंगातट पर पड़े रहना सन्यास है, परन्तु यह सच नहीं है। भौतिक पदार्थों का त्याग मात्र सन्यास नहीं है, अपितु यह राग—द्वेष, मोह—ममता प्रभृति आन्तर भावों का त्याग है। इसके इन्द्रियजन्य और भ्रमणशीलता का प्रधान उद्देश्य था परोपकार। सर्वविध हिंसा का परित्याग करते हुए वह रात—दिन प्राणियों की सेवा हेतु घूमता था। सभी प्राणियों को अभयदान देता था। वह अपने पराये की भावना से बहुत ऊपर उठकर 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का व्यवहार करता था। समूचा विश्व उसका कुटुम्ब बन जाता था। दीनों अनार्थों की रक्षा करना और प्राणिमात्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना सन्यासी का एक मात्र ध्येय होता था। सन्यासी समाज के लिये कितना उपयोगी होता था, इसका परिचय शंकराचार्य प्रभृति सन्यासियों के लोकोपकारी कार्यों एवं विचारों से अच्छी तरह मिल जाता है।

आज जिस समाज में व्यक्तियों में व्यक्तियों को ऊपर उठाने की योजनाएँ बनती हैं अथवा तत्केन्द्रभूत मानव के वैयक्तिक—शारीरिक एवं मानसिक विकास की ओर कोई समुचित ध्यान नहीं दिया जाता।

वैज्ञानिक उपलब्धि के इस युग में व्यक्ति निरन्तर उपेक्षित होता जा रहा है। वैदिक ऋषियों ने इस तथ्य को समझा, समाज को ऐश्वर्य से नहीं प्रत्युत् शारीरिक एवं मानसिक रूप से उत्कृष्टतर व्यक्ति सौंपकर उसे बदलने का स्वप्न देखा और संस्कार पद्धति को जन्म दिया। इस प्रकार संस्कार योजना व्यक्तिपरक होती हुई भी प्रमुखतया एक स्थायी एवं सुदृढ समाज की आधार शिला है।<sup>9</sup>

मनुष्य के जीवन के लक्ष्य स्वरूप पुरुषार्थ चतुष्टय में काम के बिना शरीरोत्पत्ति नहीं हो सकती। अर्थ के अभाव में शरीर की स्थिति नहीं रह सकती। बिना लक्ष्य निर्धारण के अर्थी स्वार्थी हो जाते हैं और कामना करने वाले कामी। यही नहीं स्वार्थी और कामी मिलकर समाज को नष्ट कर देते हैं। अतः अर्थ और काम को मोक्ष हेतु उपयोगी बनाने का नियामक है धर्म। इस प्रकार स्पष्ट है कि पुरुषार्थ व्यक्ति के जीवन को संतुलित बनाने के साधन हैं।

लक्ष्य प्राप्ति के सोपान के रूप में चार आश्रमों की व्यवस्था की गयी। ब्रह्मचर्य आश्रम में सम्यक् विकास, गृहस्थ आश्रम में सम्यक् अर्थ का अर्जन व सन्तानोत्पत्ति, वानप्रस्थ आश्रम में गृहस्थ जीवन के त्याग के साथ-साथ पुत्र-पौत्रादि को संरक्षण देने एवं सन्या समें मोक्ष रूपी लक्ष्य के समीप जाने का मार्ग चार सोपानों के रूप में दिखाया जाता है।

प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था यद्यपि विवादित रही है, किन्तु समाज में योग्यता के आधार पर कर्म का विभाजन करके व्यक्ति एवं समाज के समुचित विकास का मार्ग बनाया गया है।

### उद्देश्य

प्राचीन भारतीय संस्कृति के जीवन आदर्श आधुनिक जीवन में भी चरित्र निर्माण हेतु तथा समाज की उन्नति हेतु आवश्यक हैं, इस तथ्य की व्याख्या करना।

### निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति में एक ओर व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिये षोडश संस्कारों, चार पुरुषार्थों, एवं चार आश्रमों की व्यवस्था की गयी है तो दूसरी ओर समाज के बहुमुखी विकास के लिये वर्ण व्यवस्था का प्रतिपादन किया गया है। संस्कार, पुरुषार्थ, आश्रम एवं वर्ण व्यवस्था का प्रतिपादन विशुद्ध शास्त्रीय चिन्तन के आधार पर हुआ है। इन्हीं तत्वों से अनुप्राणित भारतीय परम्परा में सच्चा गुरु हमारे मिथ्या बोध को नष्ट कर देता है। सुगति और कुगति के मार्गों तथा पुण्य और पाप का भेद प्रकट कर देता है। कर्तव्य और अकर्तव्य का मार्ग दर्शन करता है। दर्प आदि दोषों से रहित शान्ति युक्त एवं आज्ञापालक शिष्य शिक्षा का अधिकारी होता है।

पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के प्रति व्यामोह से ग्रसित वर्तमान समाज का जनमानस यदि प्राचीन भारतीय संस्कृति को अपनाकर अपने जीवन का सर्वांगीण विकास करने की ओर अग्रसर हो तो आधुनिक मनुष्य एवं समाज के साथ-साथ राष्ट्र की उन्नति अवश्यम्भावी है। इसी तरह आतंकवाद एवं भ्रष्टाचार में

लगे हुए लोग यदि सत्य अहिंसा के मार्ग पर चलने का प्रयास करें तो यह सम्पूर्ण विष्व खुशहाल हो सकता है। इस तरह स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति के मौलिक तत्व आज भी प्रासंगिक हैं।

### संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्राचीन भारतीय संस्कृति—डा० वी०के० सिंह, पृष्ठ 3
2. चरकसंहिता
3. तन्त्रवार्तिक पृष्ठ 1078
4. वेदान्त सूत्र शांकरभाष्य 1.2
5. मनुस्मृति— 5, 109
6. यजुर्वेद— 40, 2
7. कामसूत्र— 1, 2, 1—6
8. वायुपुराण— 8, 170—71
9. प्राचीन भारतीय संस्कृति पृष्ठ 6